आदिवासी महिलाएं और बाजारवाद

डॉ0 किरन श्रीवास्तव,

असिस्टेन्ट प्रोफेसर हिन्दी, फ़ीरोज़ गांधी पी0जी0 कालेज, रायबरेली, सम्बद्ध लखनऊ विष्वविद्यालय, लखनऊ

जब हम गांधी जी की जन्मषताब्दी समारोह मनाने की तैयारी कर रहे थे और हमारे यषस्वी प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी फाइव ट्रिलियन डॉलर की इकोनॉमी (अर्थव्यवस्था) बनाने के लक्ष्य की ओर अग्रसर हो चुके थे तथा हम सभी अपनी वैज्ञानिक, आर्थिक और भौतिक प्रगति में इतराते हुए असीम आनंद की खोज में संलग्न थे तभी चीन के वुहान शहर से निकला एक अत्यन्त सूक्ष्मतम कोरोना वायरस ने दुनिया की सामाजिक, आर्थिक और भौतिक प्रगति में पावर ब्रेक लगा दिया। कोविड–19 की भयंकर बीमारी से बचने के लिए वैक्सीनेषन का कार्य तेजी से हो रहा है वहीं तीसरी लहर की आषंका से जनमानस में भय व्याप्त है। इस महामारी से बचने के लिए केवल शरीर की इम्युनिटी बढ़ाने, मास्क लगाने तथा सोषल डिस्टेंसिंग का पालन करने और लॉकडाउन के कठोर प्रतिबंधों के अलावा कोई दूसरा विकल्प हमारे सामने नहीं है। भारत सहित विष्व को हिलाने वाले कोरोना वायरस के प्रति कौन जिम्मेदार हैं यह जांच का विषय है लेकिन स्पर्ष, चुम्बन, आलिंगन और प्रेम का दुष्मन यह कोरोना वायरस आखिर कैसे आया ? मैं सोचती हूँ –

यह प्रकृति का प्रकोप है/या दानव की कुचेष्टा का परिणाम

समूचे संसार को निगल रहा है/अत्यन्त सूक्ष्मतम कीड़ा/कोरोना का/

हिला दिया है/ अमेरिका जैसे सुपर पावर को/यूरोप के देषों में/

अम्बार लगा है लाषों का/घातों–प्रतिघातों का निकलता/

सदा बुरा परिणाम/मानवता के दुष्मन की/कुबुद्धि का यह काम।''

अभी हाल के ही दिनों में जिस तरह से तालिबानी आतंकियों ने अफगानिस्तान में महिलाओं के साथ बलात्कार, सरेआम गोली मारकर हत्या करना तथा चौराहों पर कोड़ों से पीटना, इन खबरों को आप सबने देखा है और सुना है। क्रूरता और बर्बरता से परिपूर्ण इस अत्याचार ने पूरे विष्व के लोगों को हिला कर रख दिया। स्त्री विमर्ष की प्रासंगिकता आज विष्व के सापेक्ष में एक महत्वपूर्ण मुद्दा बन गयी है। स्त्री विमर्ष में दलित स्त्री और आदिवासी स्त्री की व्यथा–कथा सम्मिलित है। प्रस्तुत शोध पत्र में मैने आदिवासी विमर्ष के अन्तर्गत निर्मला पुतुल की कविताओं को केन्द्र में रखा है।

बुंदेलखंड और अवध के बैसवाड़ा जैसे क्षेत्रों में जहां से मैं संबंधित हूँ वहां पर असंख्य परिवारों के लिए रोजी–रोटी की समस्या खड़ी हो गयी है। रेड जोन में अभी भी यातायात और आर्थिक गतिविधियां बाधित हैं। पुरूषों के रोजगार खतम हो जाने पर परिवार को भुखमरी से बचाने के लिए घरों में रहने वाली महिलाएं आज गृहकार्य करने के बाद मनरेगा के तहत मजदूरी करने को विवष हैं।

बुंदेलखंड के चित्रकूट (पाठा) क्षेत्र में जहां पीने के पानी की किल्लत है, आदिवासी और दलित महिलाएं 5–7 किमी0 पैदल जाकर पीने

का पानी लाती है वहीं दूसरी ओर मनरेगा के अंतर्गत तालाबों की खुदाई और सड़क निर्माण का काम करती हैं। तपती लू में महिलाएं अपने सर पर तसले में मिट्टी ढो रही हैं। बुंदेलखंड के ललितपुर जिले में गरीब, दलित और आदिवासी महिलाएं पत्थर तोड़ने का श्रम कर रही हैं, झांसी में महिलाएं झाड़ू और डलिया बनाने का कार्य कर रही है। यहां कुछ स्किल प्राप्त स्त्रियां मास्क बना रही है। यही हाल देष के लगभग सभी पिछड़े इलाकों में है। मैं ऐसी साहसी और श्रमषीला महिलाओं का अभिनंदन करती हूँ। आदिवासी महिलाओं की व्यथा–कथा को निर्मला पुतुल ने अपनी कविताओं में व्यक्त किया है।

भूमंडलीकरण और बाजारवाद की आंधी ने आदिवासियों के जीवन को पूरी तरह तबाह कर दिया है। वर्तमान स्थिति यह है कि बाज़ारवाद ने आदिवासियों के जल, जंगल और जमीन पर कब्जा करने के साथ ही उनके जीवन, उनके जज्बातों के साथ खिलवाड़ किया है। निर्मला पुतुल आदिवासी लड़कियों के शोषण के प्रति समाज का ध्यान आकृष्ट करते हुए स्पष्ट शब्दों में कहती है कि उनकी बस्ती का प्रधान उनके शोषण में शामिल हो गया है क्योंकि वह बाजार के हाथों बिक चुका है –

कैसा बिकाऊ है, तुम्हारी बस्ती का प्रधान
जो सिर्फ एक बोतल विदेषी दारू में रख देता है
पूरे गांव को गिरवी
और ले जाता है कोई लकड़ियों के गट्ठर की तरह
लाद कर अपनी गाड़ियों में तुम्हारी बेटियों को
हजार–पांच सौ हथेलियों पर रखकर।''[1]

आजाद भारत का संविधान कल्याणकारी राष्ट्र की संकल्पना करता है। विकसित एवं कल्याणकारी राष्ट्र की अवधारणा तभी पूर्ण हो सकती है जब देष के सभी भागों की समान रूप से उन्नति हो तथा पिछड़ी जातियों के साथ ही दलित एवं आदिवासी इलाकों में विकास के समुचित कार्यक्रम पहुंचे। पंचवर्षीय योजनाओं एवं कार्यक्रमों का लाभ समाज की दोनों इकाई स्त्री और पुरूष को समानता के आधार पर उपलब्ध हो। कोई भी राष्ट्र तभी उन्नति कर सकता है जब उसके प्रत्येक नागरिक और सुदूर ग्रामीण अंचल के आम जन को रोजी–रोटी के साथ षिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छ पेयजल तथा बिजली जैसी मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध हो। आजादी के 75 वर्षों बाद भी हमारी प्रगति, कुछ क्षेत्रों और कुछ वर्गों तक ही सीमित रही है। देष की अधिकांष जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवन जी रही है। पिछड़े, दलित और आदिवासी इलाकों में स्थिति और भी गंभीर है, शोचनीय है। विडम्बना यह है कि विकास के नाम पर उनका शोषण बढ़ता जा रहा है। शोषण की सबसे ज्यादा षिकार आदिवासी महिलाएं और लड़कियां हो रही हैं। निर्मला पुतुल ने संथाल परगना की आदिवासी महिलाओं की दयनीय स्थिति, उनके शोषण का दारूण चित्रण अपनी कविताओं में किया है।

संथाल आदिवासी परिवार में जन्मी और 'बदलाव फाउंडेषन' में कार्यरत निर्मला पुतुल ने संथाल भाषा की परंपरा में अपनी सषक्त पहचान दर्ज करायी है। आदिम दुनिया की आदिवासी औरतों और लड़कियों के जीवन–संघर्ष, समस्याओं और उनकी व्यथा–कथा को पूरी षिद्दत से महसूस करके अपनी कविताओ में साफगोई के साथ बयान किया है।

और हां पहचानो।
अपने ही बीच की उस कई–कई ऊँची सेंडिल वाली
स्टेला कुजूर को भी
जो तुम्हारी भोली–भाली बहनों की आंखों में
सुनहरी जिंदगी का ख़्वाब दिखाकर
दिल्ली की आया बनाने वाली फैक्ट्रियों में

कर रही हैं कच्चे माल की तरह सप्लाई।[2]

समाज और जीवन के दुष्मन कोरोना से बचने के लिए हाथों का सैनिटाइजेषन अति आवष्यक है। लाक–डाउन के प्रथम चरण में जब बाजार और दुकानें बंद थी तब कानपुर शहर में एक रात्रि में ही सात मधुषालाओं के ताले टूटे और मदिरा की चोरी हुई। हरियाणा राज्य में शराब का एक गोदाम ही चोरी में चला गया। सरकार ने लाइसेंस निलम्बित करके जाँच के आदेष दिये हैं। लाकडाउन के दूसरे या तीसरे चरण में आवष्यक वस्तुओं की दुकानों के साथ ही शराब की दुकानें खोलने की पुरजोर मांग व आग्रह कई राज्यों के सम्मानित नागरिकों ने किया। समझदार सरकारों ने राजस्व वृद्धि के लिए जनता की मांग पर मदिरालयों को खोलने का आदेष दिया। मैं सोचती थी कि सरकार की आय में वृद्धि के साथ ही कुछ लोग हाथों को सैनिटाइज करने के साथ गले को भी सैनिटाइज करना चाहते हैं। लेकिन मधुषाला खुलते ही खरीददारों की भारी भीड़ ने (जिसमें युवा, अधेड़, वृद्ध सम्मिलित हैं) सभी को अचम्भित कर दिया। देष में बढ़ते हुए नषे का अंदाजा लगा। नषा, कोरोना वायरस की तरह ही जीवन, समाज और संसार के लिए घातक एवं नुकसानदेय हैं।

आदिवासी बच्चियों की तस्करी का सबसे अहम कारण गरीबी, भुखमरी है। नषा लेने और शराब पीने की लत उनकी गरीबी को भयावह बना देती है। निर्मला पुतुल ने अपनी कविताओं के माध्यम से लड़कियों के माता–पिता को सचेत किया है कि अपनी बुरी आदतों से बाज आयें, उनसे मुक्त हों। शराब की लत को सबसे अधिक बढ़ावा देते हैं – असामाजिक तत्व। आदिवासियों की सबसे बड़ी कमजोरी है उनकी शराब पीने की लत। बाजारवाद के अपने स्वार्थों के चलते ही उन्हे शराब पिलायी जाती है या शराब पीने की आदत डाली जाती है। एक आदिवासी ने अपने एक साक्षात्कार में बताया कि ''उन्हें उनके अच्छे कामों के ईनाम में शराब की बोतल दी जाती है'' कभी–कभी मजदूरी के रूप में भी बोतल दी जाती है। आदिवासी पुरूषों की तुलना में आदिवासी महिलाओं की स्थिति अधिक दयनीय है ''सूत्रों का कहना है कि छत्तीसगढ़ के बंगलों में काम देने के नाम पर जवान आदिवासी महिलाओं की छटनी की जाती है और यौन उत्पीड़न का षिकार बनाकर ही उन्हें काम पाने के योग्य घोषित किया जाता है।''[3] कवयित्री निर्मला पुतुल चुड़का सोरेन आदिवासी के बहाने से पूरी बस्ती को शराब की लत व नषे से बचाने का पुरजोर आग्रह करती है –

तुम्हारे पिता ने कितनी शराब पी, यह तो मैं नहीं जानती

पर शराब उसे पी गयी यह जानता है सारा गांव

बचाओ इसमें डूबने से अपनी बस्तियों को।[4]

भारतीय श्रमिक अर्थव्यवस्था पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से आगे बढ़ रही है। लेकिन विकास का लाभ समाज के गरीब से गरीब व्यक्ति तक नहीं पहुंच रहा है। आदिवासी इलाकों में मल्टीनेषनल कंपनियां तथा बड़े औद्योगिक घराने जहां प्राकृतिक संसाधनों का दोहन लगातार कर रहे हैं वहीं आदिवासी श्रमिक पत्थर तोड़ने, खदान खोदने व फैक्टरियों में खतरनाक कार्यों को करने के लिए विवष हो रहे हैं। उन श्रमिकों को जीवन की साधारण सुविधाएं भी उपलब्ध नहीं हो रही हैं। यह भी देखने में आता है कि सरकार की अधिकांष नीतियां पूंजीपतियों के हितों की रक्षा के लिए ही बनी हैं अगर थोड़े बहुत कानून आदिवासी और मजदूरों के कल्याण के लिए बने भी हैं तो उसका पालन नहीं होता है। यदि आप बिजली को विकास का एक मापदण्ड मान ले तो उसके वितरण और उपभोग में विषमता विद्यमान है। अनेक प्रामाणिक आंकड़ों के आधार पर अरूंधती राय अपनी पुस्तक में लिखती हैं, 'भारत में योजनाकार गर्व से कहते हैं कि देष में आज पचास साल पहले के मुकाबले बीस गुना ज्यादा

बिजली की खपत होती है वे इसे प्रगति के सूचकांक के रूप में प्रयोग करते हैं। वे अमूमन यह नहीं बताते कि आज भी सत्तर फीसदी ग्रामीण के घरों में बिजली नहीं है। निर्धनतम राज्यों, बिहार, उत्तर प्रदेष और राजस्थान के पचासी फीसदी से अधिक निर्धनतम लोगों को बिजली उपलब्ध नहीं है, जिनमें मुख्यतः दलित और आदिवासी के घर हैं। दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र के लिए यह कितना शर्मनाक है आष्चर्यजनक रिकार्ड है।'' [5]

सामाजिक और आर्थिक विषमता ही हमारे शोषण का मूल कारण है। बाजारवाद की विषेषता यह है कि वह आदमी को उसकी सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विरासत से काटकर एक अलग तरह की जीवनषैली का सपना दिखाता है। यह सपना नव्यता एवं भव्यता से पूर्ण है जिसके पीछे भागना जरूरी लगता है। स्त्री–पुरूष सभी उपभोक्तावादी जाल में फंस जाते हैं। विद्वान लेखिका कुमुद शर्मा इस जाल को रेखांकित करती हुई कहती है, ''स्त्रियां अपना बौद्धिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व सामाजिक विकास करने की बजाय सस्ते, कामुक और उपभोक्तावादी सांस्कृतिक जाल में उसी तरह फंसने के लिए आतुर हो जाती है जिस तरह चिराग को देखकर कीड़े–मकोड़े और पतंगे जलने के लिए खिंचे आते हैं।''[6] बाजार का उपभोक्तावादी जाल शहर और ग्रामीण दोनों जगह पर बिछा हुआ है। अषिक्षित आदिवासी महिलाएं इस जाल में आसानी से फंस जाती है। निर्मला पुतुल आदिवासी भाईयों को सचेत करती हैं कि वे अपनी बहनों को बाजारवाद के मोह से बचाएं –

बचाओ अपनी बहनों को

कुंवारी मां बनी पड़ोस की उस षिलवंती के मोह जाल से

पूरी बस्ती को रिझाती जो

बैग लटकाये जाती है बाजार

और देर रात गये लौटती है

खुद को बेचकर बाजार के हाथो।''[7]

सामाजिक स्थिति की जटिलता ने रचनात्मक चुनौतियों को कई गुना बढ़ा दिया है। ईमानदारी और परिश्रम जैसे गुणों का अवमूल्यन हुआ है। लोगों की महत्वाकांक्षाएं असीमित हो गयी हैं। बिना परिश्रम के रातों–रात लोग करोड़पति और अरबपति बनना चाहते हैं। क्रय–विक्रय में बिचौलियों की भूमिका के साथ उनका मुनाफा (कमीषन) भी बढ़ा है। पलायन करने वाली आदिवासी लड़कियों को यदा–कदा बचाया भी जाता है। एक राज्य की बाल महिला समाज कल्याणमंत्री विमला का कहना था, 'जो लड़कियां रेस्क्यू की जाती हैं उनको पूरी सुविधा तथा वैधानिक मदद दी जाती है। लेकिन ये (रेसक्यू) बचाई गई लड़कियां दलालों के बारे में कुछ नहीं बताती जिससे उन पर अंकुष नहीं लग पाता। पूर्व मंत्री महोदय का कहना है कि महानगरों में चल रहे प्लेसमेंट सेंटर्स को प्रतिबंधित किया जाना चाहिए तथा आदिवासी लड़कियों के माता–पिता को भी सचेत होने की जरूरत है।' एक विधि–विषेषज्ञ की राय है कि दरअसल इन लड़कियों को दलालों के बारे में कुछ पता नहीं होता क्योंकि तस्करी के समय उनकी उम्र 10 या 12 साल की होती है। कभी–कभी उनके पलायन में उनके किसी निजी व्यक्ति का या रिष्तेदार का हाथ होता है जिसके खिलाफ वे कुछ बोल नहीं पाती। ये आदिवासी लड़कियां जहां दूसरे जगहों पर शारीरिक और मानसिक शोषण भोग रही है वहीं पर आदिवासी औरतें अपने घर में पीड़ित–प्रताड़ित होकर भी सुरक्षित नहीं है। निर्मला पुतुल अपनी कविताओं में भोले–भाले, आदिवासियों को सावधान और सतर्क करती है। आदिवासी न केवल गरीबी का जीवन जी रहे हैं, बल्कि उनकी इज्जत और अस्मत भी खतरे में है। निर्मला पुतुल शराब के बदले आबरू लेने वालों

को पहचानने और उनसे दूर रहने की सलाह आदिवासियों को देती है –

देखो तुम्हारे ही आंगन में बैठ

तुम्हारे हाथों का बना हड़िया तुम्हें पिला–पिला कर

कोई कर रहा है तुम्हारी बहनों से ठिठोली

बीड़ी सुलगाने के बहाने बार–बार उठकर रसोई में जाते

उस आदमी की मंषा पहचानों चुड़का सोरेन

जो तुम्हारी औरत से गुपचुप बतियाते बात–बात में दांत निकाल रहा है। [8]

भारत वर्ष में ही नहीं अपितु विष्व के तमाम विकसित देषों में भी आदिवासियों की आर्थिक स्थिति दयनीय है। उनमें षिक्षा का अभाव है तथा वह गरीबी और बेरोजगारी की समस्याओं से जूझ रहे हैं। चाहे अमेरिका के मूल निवासी हों या आस्ट्रेलिया के जनजाति या कबीले। जीवन–निर्वाह की सामान्य सुविधाएं न होने के कारण जन–जातियों और कबीलों की संख्या लगातार घट रही है उनकी भाषा और संस्कृति का लोप हो रहा है। अंडमान निकोबार दीप समूह के एक आदिवासी ने अपनी जनजाति का उल्लेख करते हुए बताया कि आजादी के समय उनकी संख्या 991 के आसपास थी अब केवल 51 बचे हुए हैं। उनकी न कोई बोली बची है और न संस्कृति। आज समाज के विभिन्न किस्म के माफियाओं ने तथा नयी प्रजाति के नेताओं ने बड़े घोटाले करके मनुष्यता को कलंकित किया है। 'सरवाइवल ऑफ फिटनेस' का सिद्धान्त लागू हो रहा है। विष्व के दूसरे देषों में आदिवासियों का अंत हो रहा है। राजेष्वर सक्सेना अपनी पुस्तक ''उत्तर आधुनिक सौन्दर्यषास्त्र और द्वंद्ववाद' में लिखते हैं, ''यूरोप और अमेरिका ने, हर दौर में आदिमों (आदिवासी जैसों) का संहार किया है। कह सकते हैं कि आदिम–वंषियों को मार कर ही दोनों ने स्वयं को आबाद किया है। दोनों ने लोक को ध्वस्त किया है और इस तरह अपने नगरीय महानगरीय का निर्माण किया है। दोनों ने बर्बर की थ्योरी रची है। बर्बर मन का नृविज्ञान खड़ा किया है।''[9]

कोरोना काल के बदलते परिवेष में जब पूंजी ने श्रम को दुत्कार कर बिना सहायता किये अपने से दूर कर दिया है ऐसे में प्रवासी श्रमिकों और आदिवासी महिलाओं का शोषण चरम पर है। सामंतवाद का आधार शोषण है। पूंजीवाद और सामंतवाद ने बड़ी चालाकी से शोषण का रूप बदल दिया है। भले ही दास प्रथा का अंत हो गया और बंधुआ मजदूर की प्रथा अवैधानिक घोषित हो गयी है, लेकिन बाजारीकरण की विकराल आंधी अन्य छिद्रों से अंदर घुस रही है। दुर्बल, दलित, वंचित के तन–मन पर अधिकार करने की लालसा फलती–फूलती रही।''[10] निर्मला पुतुल अपनी एक कविता में आदिवासी मां का हृदय विदारक चित्र खींचती है। जो दास–प्रथा की याद को ताजा कर देता है –

तुम्हारी मां को भी

हजार–हजार कामुक आंखों और सिपाहियों के पंजे झेलती

चिलचिलाती धूप में

ईंट पाथते, पत्थर तोड़ते, मिट्टी को काटते हुए भी को

किसी बाज के चंगुल में चिड़ियों की तरह

फड़फड़ाते हुए एक बार देखा था उसे। [11]

राजेष्वर सक्सेना अपनी पुस्तक में एक जगह पर अति महत्वपूर्ण प्रष्न उठाते हैं, ''नया माहौल मानव–विरोधी, आतंकी, हिंसक और अराजक पूर्ण क्यों है ? जिंदगी के हर मोड़ पर एक विखंडन क्यों ? राजनीतिक अर्थषास्त्र का हर मुद्दा विखंडित होकर एक खेल में तब्दील कैसे हो गया ? उपभोक्ताओं को 'मरे हुए चूहे की उपयोगिता' समझा देना तथा गंजे को तीन कंघी (दो के साथ

एक फ्री) बेच देना, अब ठगी नहीं बल्कि बाजार की कुषलता मानी जाती है। व्यापार का मुख्य उद्देष्य लाभ है जो लालच (ग्रीड) पर आधारित है। भारत पष्चिम का 'नेचुरल एलाई' बन गया है। वह भूमण्डलीकरण और विष्व अर्थव्यवस्था का आवष्यक अंग बन गया है जिसके अन्तर्गत पूंजी को विष्व भर में वितरित करने के लिए नये–नये संस्थानों, दलालों को नियुक्त किया जाने लगता है। आर्थिक भूगोल और जनजातीय स्वभाव की मूलभूत विषेषताओं को जानने के लिए इस पूरी पृथ्वी के चप्पे–चप्पे का सर्वेक्षण–नव साम्राज्यवादी दृष्टिकोण से किया जाने लगता है। ..... उसके तहत एषिया–अफ्रीका और लैटिन अमरीका के समस्त देषों की 'प्राकृतिक– सामाजिक पृष्ठभूमि को ठीक से वर्गीकृत कर लिया गया है और इस तरह, विष्व–वित्तीय पूंजी की गेम थ्योरी का, उन्मुक्त विष्व बाजार की गेम थ्योरी का बोल–बाला शुरू हो गया है।'' [12]

देष के आदिवासी इलाकों से पैंतीस हजार लड़कियों का गायब होना गंभीर बात है। एक टी0वी0 चैनल ने शंका करते हुए जांच की मांग की है कि कहीं इसके तार अंतर्राष्ट्रीय मानव तस्करी से तो नहीं जुड़े हैं ? समस्या चाहे कितनी गंभीर हो, चाहे जितना बड़ा अन्याय हो, इसका समाधान हिंसा से नहीं हो सकता। अन्याय के विरोध में, हो सकता है कि कुछ मुट्ठी भर आदिवासी, नक्सलवाड़ी जैसे हिंसक ग्रुप में शामिल हो गये हैं लेकिन यह तो तय है कि इस सब के पीछे अषिक्षा, बेरोजगारी और आर्थिक असमानता ही जिम्मेदार हैं और यह भी समझना चाहिए कि 99 प्रतिषत आदिवासी ईमानदार, सीधा–साधा अहिंसक और शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहता है। वह अपनी जीवन दषा को सुधारने के लिए सरकार की ओर टकटकी लगाये है। निर्मला पुतुल की कविताएं आदिवासी समाज में चेतना जाग्रत करती हैं और संदेष देती हैं कि वे एक जुट होकर अपने सम्मान को बचाएं तथा अपने शोषण के विरूद्ध संगठित होकर आवाज उठायें। अन्याय का सबसे बड़ा प्रतिकार तो यही है कि वे एकजुटता के साथ स्वयं को शोषित होने से बचाएं। निर्मला पुतुल आदिवासियों का आवाहन करती हैं –

उठो कि अपने अंधेरे के खिलाफ उठो
उठो अपने पीछे चल रही साजिष के खिलाफ
जैसे तूफान से बवंडर उठता है
उठती है जैसे राख में चिंगारी।''[13]

अपनी जमीन से जुड़ी मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' जरायम पेषा जनजातियों के जीवन पर आधारित है जिसमें जनजातियों के शारीरिक, मानसिक और आर्थिक शोषण का भयावह चित्र देखने को मिलता है। मैत्रेयी पुष्पा ने जनजातियों की उपेक्षा पर चिंता जताते हुए व्यंग्य किया है, 'सरकार को आदमी से ज्यादा जंगली जानवर की चिंता है। आदमी मरे तो कोई बात नहीं, पर जंगली जानवर नहीं मरना चाहिए। निर्मला पुतुल की आदिवासी औरते भी चाहती हैं कि उनके साथ इंसान की तरह ही व्यवहार किया जाये जानवर की तरह नहीं। सुगिया की इच्छा है कि लोग उसके दांत, होंठ तथा उसकी हंसी की तारीफ न करें, उसके नाचने–गाने व आंखों की प्रषंसा करने में शब्द न लुटाये। लोग उसकी कमनीय देह और देह की भाषा में बात न करें, उसकी देह के लिए प्रलोभन न दें बल्कि उसके आंतरिक सौंदर्य और गुणों की प्रषंसा करें। सुगिया यह सोचकर चिंतित हो जाती है कि यहां का हर पांचवा आदमी उससे देह की भाषा में क्यों बतियाता है ? सुगिया सोचती है –

काष कोई कहता कि –
तुम बड़ी मेहनती हो सुगिया
बहुत भोली और ईमानदार हो तुम
काष! कहता कोई ऐसा ? [14]

बाजार ने देह शोषण के नये–नये तरीके निकाल लिये हैं। बाजारवाद, देह को पूंजी मानकर निवेष करता है। बाजार नवउपनिवेष का एक शक्तिषाली हथियार है। बाजार उदारवाद का एक मुखौटा भी रखता है। बाजारवाद ने अपने पांव सुदूर गांवों एवं वनांचलों तक पसार लिए हैं। वर्तमान दौर में जहां हर चौथी पांचवी लड़की की आंखों में बड़े–बड़े सपने और बड़ी–बड़ी महत्वाकांक्षाएं पलती हैं जिन्हें हासिल करने के लिए वे स्वयं को बहुत पीछे छोड़ देती है। पष्चिमी संस्कृति की चकाचौंध में सही–गलत की पहचान से महरूम हो जाती है। शहरी बाबू और गोरे लोग सब्जबाग दिखाकर ऐसी लड़कियों को गुमराह करने में सफल हो जाते हैं। इन भोली–भाली लड़कियों को शायद नहीं मालूम कि ये लोग–

ये वो लोग हैं जो खींचते हैं
हमारी नंगी–अधनंगी तस्वीरें
और संस्कृति के नाम
करते हमारी मिट्टी का सौदा।
ये लोग वे लोग हैं जो मुंह पर
करते हैं मेरी बड़ाई
और पीठ पीछे की फुसफसाहटों में देते हैं
बदनाम, बदचलन औरत की संज्ञा .....
और हमारी ही जमीन पर खड़े हो
पूछते हैं हमसे हमारी औकात। [15]

अधिकांष आदिवासी लड़कियों के सपनों में ईमानदारी, परिश्रम और लगन की चाहत होती है। अपनी मिट्टी और अपनी जमीन से जुड़ी उनकी महत्वाकांक्षाएं हैं। वे मषीन से नहीं परिश्रम से पैसा कमाना चाहती हैं। ऐसी जगह ऐसे युवक से विवाह करके घर बसाना चाहती हैं जहां के लोग 'लोक' को महत्व देते हैं। अलौकिक को नहीं। जहां श्रम की पूजा और व्यक्ति के आंतरिक गुणों की महत्ता होती है। शायद इसीलिए एक आदिवासी लड़की अपनी शादी के लिए अपने पिता से आग्रह करती हैं उसकी शादी इतनी दूर न करना कि वह उससे आसानी से मिल न पाये। उसका विवाह ऐसी जगह हो जहां, उसे मात्र वस्तु नहीं व्यक्ति समझा जाय जहां औरत–आदमी, ऊँच–नीच गरीब, अमीर का भेद न हो, अपने गांव घर के लिए जिसके मन में संवेदनाएं जगती हों –

बाबा, मत व्याहना उस देष में
जहां आदमी से ज्यादा
ईष्वर बसते हों .....
उसके हाथ में मत देना मेरा हाथ .....
जिन हाथों ने दिया नहीं कभी किसी का साथ .....
..
उसी के संग व्याहना, जो
कबूतर के जोड़े और पण्डुक पक्षी की तरह, रहे हरदम साथ
घर बाहर खेतों में काम करने से लेकर
रात सुख–दुख बांटने तक, जिससे खाया नहीं जाए –
मेरे भूखे रहने पर उसी से व्याहना मुझे। [16]

आदिवासियों की जीवन शैली, उनकी इच्छाएं–आकांक्षाएं, उनके सुख–दुःख को महाष्वेता देवी ने अपने उपन्यासों में जीवंतता के साथ चित्रित किया है। एक चीनी नाटककार ने कहा था कि साहित्यकार अपने समय का सबसे ज्यादा प्रमाणित व्यक्ति होता है।' निर्मला पुतुल की कविताएं और उनके आदिवासी लोग (स्त्री–पुरूष) अपने समय के प्रामाणिक व्यक्ति भी हैं और इन की मांग भी प्रामाणिक है। उन भोले–भाले आदिवासियों की सबसे बड़ी कामना और इच्छा है कि –

जंगल की ताजी हवा

नदियों की निर्मलता

पहाड़ों का मौन

मिट्टी का सोंधापन

फसलों की लहलहाहट।'

और अविष्वास भरे इस दौर में –

थोड़ा सा विष्वास !

थोड़ी सी उम्मीद !!

थोड़े से सपने !!! [17]

संदर्भ ग्रन्थ

1- नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाषन, नई दिल्ली, पृ0सं0 20

2- नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाषन, नई दिल्ली, पृ0सं0 21

3- आधी दुनिया का सच–कुमुद शर्मा, सामयिक प्रकाषन, नई दिल्ली, संस्करण–2008 पृ0सं0 20

4- नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाषन, नई दिल्ली, पृ0सं0 19

5- न्याय का गणित – अरून्धती राय, अनुवाद–जितेन्द्र कुमार, राजकमल पेपर बैक्स, प्रथम संस्करण 2005, पृ0सं0 115

6- आधी दुनिया का सच – कुमुद शर्मा, सामयिक प्रकाषन, नई दिल्ली, संस्करण–2008 पृ0सं0 40

7- नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाषन, नई दिल्ली, पृ0सं0 21

8- नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाषन, नई दिल्ली, पृ0सं0 19

9- उत्तर आधुनिक सौन्दर्य शास्त्र और द्वन्द्ववाद – राजेष्वर सस्केना, सापेक्ष–43, पृ0सं0 122

10- 'सही नाप के जूते' – लता शर्मा, प्रकाषक – भारतीय पुस्तक परिषद, 2009 नई दिल्ली

11- नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाषन, नई दिल्ली, पृ0सं0 19

12- उत्तर आधुनिक सौन्दर्य शास्त्र और द्वन्द्ववाद – राजेष्वर सस्केना, सापेक्ष–43, पृ0सं0 319

13- नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाषन, नई दिल्ली, पृ0सं0 14

14- नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाषन, नई दिल्ली, पृ0सं0 81

15- नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाषन, नई दिल्ली, पृ0सं0 53

16- नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाषन, नई दिल्ली, पृ0सं0 49, 50, 52

17- नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाषन, नई दिल्ली, पृ0सं0 77